अभिज्ञानशाकुन्तल की अभिनव समीक्षा

वसन्तकुमार म. भट्ट
पूर्व-निदेशक, भाषा-साहित्य भवन, गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदावाद – 380 009
v.k.bhatt53@gmail.com

भूमिका : कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में शकुन्तला एवं शकुन्तला के पुत्र के अभिज्ञान की समस्या को निसर्ग से लिए गये प्रतीकों के माध्यम से प्रस्तुत करने का संकल्प किया है। निसर्ग के इन प्रतीकों को संज्ञान में लेने से ही यह राज़ खुल कर सामने आयेगा कि यह नाटक क्यूँ विश्वनाट्य-साहित्य में प्रथम पंक्ति में पांक्तेय बना है। इससे पहले, हमारे पुरोगामी विवेचकों ने क्या मत-मतान्तर रखे हैं उनकी जानकारियाँ एवं उनके मतों की समीक्षा करना आवश्यक है। अभिज्ञानशाकुन्तल जैसी विश्वप्रसिद्ध नाट्यकृति के बारे में, किसी भी विवेचक को अपना मत उपस्थित करने से पहले, पुरोगामी विद्वानों के द्वारा क्या कहा गया है ?- उसका परीक्षण भी करना चाहिए। जैसे कि, इस नाटक की प्रस्तावना में नटी-गीत आता है, एवं उसके बाद प्रथमांक में भ्रमरबाधा प्रसंग आता है। तत्पश्चात्, पञ्चम एवं षष्ठांक में भी भ्रमर की उपस्थिति वर्णित है। अतः किसी भी प्रेक्षक या सहृदय के मन में यह बात आयेगी ही कि कालिदास ने नायक दुष्यन्त के लिए भ्रमर का प्रतीक[1] प्रयुक्त किया है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने (केवल) पञ्चमांक के आरम्भ में रखे हंसपदिका-गीत में वर्णित *अभिनवमधुलोलुपः* शब्द को अग्रेसारित करते हुए कहा है कि जब तक दुष्यन्त में रही भ्रमर-वृत्ति निवृत्त नहीं होगी तब तक शकुन्तला का भावि अनिश्चितता के गर्त में जाना निश्चित है। यानी दुष्यन्त के अन्तःपुर में स्थित अन्यान्य हंसपदिकाओं के यूथ में शकुन्तला भी सम्मीलित हो कर रोती रहेगी। अत एव, महाकवि ने दुर्वासा के शाप का विधान किया है। परिणामतः प्राप्त होनेवाले पश्चात्तापयुक्त विरहाग्नि और प्रायश्चित्त से दोनों प्रणयी अपने को परिशुद्ध, पवित्र करके अन्त में पूर्ण मिलन को प्राप्त कर सके। ऐसा मिलन ही चिरस्थायी बन सकता है। श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के इसी अभिमत का ही अनु-वाद या अर्थवाद करते हुए गुजराती भाषा के कवि उमाशंकर जोशी ने लिखा है कि दुष्यन्त में व्यष्टि-निष्ठा का अभाव था और शकुन्तला में समष्टि-निष्ठा का अभाव था। जिसके कारण दोनों के भाग्य में दुर्वासा का शाप आ पडा था। इस शाप से दोनों में रही स्वभावगत क्षतियाँ दूर होती हैं और अन्त में पूर्ण मिलन साकार होता है।। एकमात्र भ्रमर के प्रतीक से प्रेरित हुई यह विवेचना हमारा पूर्वपक्ष है।।

[1]

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस नाटक से उभर रहे नैतिक मूल्यों को अपने विवेचन में स्पष्ट किया है, वह सद्यः हृदयङ्गम होनेवाला है। तथा आधुनिक साहित्यकारों की दुनिया में प्रायः वही सर्वस्वीकार्य बना रहा है। लेकिन, हम उन सुज्ञ महानुभाव की भावयित्री प्रतिभा की कितनी भी प्रशंसा क्यूं न करते रहे, तथापि वह विवेचन सर्वांश में सही सिद्ध नहीं हो रहा है। क्योंकि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर ने- 1. केवल नायक दुष्यन्त के लिए प्रयुक्त भ्रमर के प्रतीक को लेकर ही अपना भाष्य रचा है। 2. इस नाटक में नायिका शकुन्तला के लिए प्रयुक्त पशु-पक्षी-पुष्पादि के त्रिविध प्रतीकों को लेकर, किसीने कुछ विचार किया हो ऐसा ज्ञात नहीं है। बल्कि ऐसा कहना चाहिए कि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर एवं उमाशंकर जोशी आदि समर्थ विवेचको का भी उसकी ओर लव मात्र ध्यान गया ही नहीं है। 3. ऐसे विदग्ध विवेचक भी केवल हंसपदिका-गीत में आ रहे भ्रमर के निर्देश को आधार बना कर उपर्युक्त

---

[1] **Symbol** : Something chosen to stand for or represent something else. Usually because of a resemblance in qualities or characteristic; an object used to typify a quality, or some abstract idea. – See : *Webster's Comparative Dictionary*, 2004 Edition, p. 1270, (A red rose stands for love or romance. A broken mirror may symbolize separation.)

अर्थघटन करने के लिए उद्यत हुए हैं, उनको तो एकदेशी भाष्य ही कहना होगा। क्योंकि उन्होंने पंचमांक से इतर स्थानों पर आ रहे भ्रमर के निर्देशों पर कोई चर्चा ही नहीं की है। इस नाटक में कुल छह बार भ्रमर के निर्देश प्राप्त हो रहे हैं, जिन पर उन्होंने कुछ सोचा ही नहीं हैं। यदि उन सब को ध्यान में लेकर सोचा जायेगा तो मालूम होगा कि कालिदास ने दुष्यन्त के लिए प्रयुक्त भ्रमर का प्रतीक सर्वत्र एक समान अर्थ नहीं दे रहा है। 4. इस नाटक में कहीं पर भी शकुन्तला ने पश्चात्ताप या प्रायश्चित किया हो ऐसी कोई बात कही पर आती नहीं है। अरे ! सप्तमांक में जब नायक-नायिका का मिलन होता है तब तक शकुन्तला या दुष्यन्त को यह मालूम ही नहीं है कि उनको कोई शाप मिला था। अतः नायिका को प्रायश्चित्त करने का सवाल ही नहीं उठता है। हमें लगता है कि कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर के मत को कृतिनिष्ठ आन्तरिक प्रमाण का सर्वांश में समर्थन नही मिल रहा है, अतः वह सर्वथा चिन्त्य है ।।

[2]

अब कवि कालिदास की प्रतिभा को आत्मसात् करने के लिए शकुन्तला के लिए प्रयुक्त किये गये त्रिविध प्रतीकों पर विचार करना चाहिए। कालिदास ने नायक दुष्यन्त के लिए मुख्यत्वेन भ्रमर का प्रतीक प्रयुक्त किया है। किन्तु शकुन्तला के लिए तो उन्होंने 1. हरिणी, 2. कमल पुष्प एवं 3. चक्रवाक, कोकिल, हंस जैसे विभिन्न पक्षियों के भी प्रतीकों का साद्यन्त उपयोग किया है। यहाँ नायिका के लिए प्रयुक्त प्रतीक उसके आभ्यन्तर स्वभाव के तो द्योतक है ही, तदुपरान्त उन्ही के द्वारा शकुन्तला के भावि जीवन की व्यंजनाएं भी आकारित की हैं। कवि ने इन सारे प्रतीकों को नाटक की अनुपम एवं अद्वितीय संरचना का अविभाज्य अंग बनाये हैं। इस विचार को विस्तार से बताना होगाः-

प्रस्तावना में सूत्रधार और नटी के संवाद द्वारा कालिदास ने बताया है कि उनका यह नाटक “नवीन” एवं “अपूर्व” है[2]। अतः सहज जिज्ञासा होती है कि कालिदास ने इस नाटक में कौन कौन सी नवीनताएं एवं अपूर्वताएं उद्घाटित की हैं ? तो (क) इस नाटक में निसर्ग के निरूपण की विधा अपूर्व है[3]। हरिण के बिना शकुन्तला को या शकुन्तला के बिना हरिण को हम सोच ही नहीं सकते हैं। कण्वाश्रम में जलसिञ्चन कर रही शकुन्तला कहती है कि केवल पिता के कहने से मैं यह कार्य नहीं करती हूँ, बल्कि मुझे भी इन पेड-पौधों के प्रति सहोदर[4] जैसा प्रेम है। पिता कण्व ने भी इस बात की पुष्टि करते हुए कहा है कि शकन्तला को मण्डन प्रिय है[5], फिर भी वह वनस्पतिओं से एक पल्लव भी तोडती नहीं है। ऐसी शकुन्तला को ससुराल भेजने के लिए जब तैयार की जाती है तब आश्रमवृक्षों ने भी अपनी शाखाबाहुओं से निकाल कर दूकुल वस्त्र एवं अन्य अलंकार दिये हैं। (*अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितैर्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद्भेदप्रतिदिन्द्विभिः* ।।4-8) मनुष्य एवं निसर्ग के बीच का ऐसा अद्वैत

---

[2] अद्य खलु कालिदासग्रथितवस्तुनाऽभिज्ञानशाकुन्तलनामधेयेन **नवेन** नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः। (पृ. 8), नन्वार्यमिश्रैः प्रथममेवाज्ञप्तम् अभिज्ञानशाकुन्तलं नाम **अपूर्वं** नाटकं प्रयोगेऽधिक्रियतामिति। (पृ.13) *अभिज्ञान-शाकुन्तलम्,* (राघवभट्टस्यार्थद्योतनिकया टीकया सहितम्), प्रका. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, नयी दिल्ली, 2006.

[3] ऋतुसंहार में विशुद्ध निसर्ग (प्रकृति) का निरूपण किया गया है, रघुवंश के सीता-त्याग प्रसंग में मानव के दुःख से निसर्ग के पशु-पक्षी आदि विषादग्रस्त होते हैं। तो, कुमारसम्भव में हिमालय में जो अकाल में वसन्त का आगमन होता है उसका समाधिस्थ शिव के मन उपर प्रभाव पडता है। मेघदूत में विरही यक्ष समग्र प्रकृति में शृङ्गार को अत्र तत्र सर्वत्र बिखेरता रहता है। परन्तु अभिज्ञानशाकुन्तल में कालिदास ने प्रकृति और मनुष्यों का अद्वैत ही साकार किया है। मनुष्य और प्रकृति के बीच का ऐसा अद्वैत भाव जगत्-साहित्य में मिलना सुदुर्लभ है ।।

[4] न केवलं तातनियोग एव, अस्ति ममापि सोदरस्नेह एतेषु। *अभि. शाकु., देवनागरी पाठः,* पृ. 27

[5] नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्। *अभि. शाकु. देवनागरी-पाठे (चतुर्थांकः-9),* पृ.134.

समग्र विश्वसाहित्य में खोजने पर भी मिलना असंभव सा है । (ख) नाटक में संघर्ष तत्त्व का होना अनिवार्य है[6]- ऐसा पश्चिमी नाट्यमीमांसा में माना गया है । तथा हमारे नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थों में भी जिन पाँच अर्थप्रकृतियाँ गिनाई गई हैं उनमें "नियाप्ति" (=संयत हुई है प्राप्ति जिसमें) शब्द भी प्रायः[7] वही कहता है । कालिदास ने अपने आरम्भिक मालविकाग्निमित्र एवं विक्रमोर्वशीय नाटकों में जिस तरह से पूर्वपरिणीता रानियों की ओर से आनेवाले संघर्ष निरूपित किये हैं उस मार्ग को छोड कर, इस नाटक में तो केवल दुर्वासा के शाप का ही संविधान किया है । इस सन्दर्भ में भी यह नाटक अपूर्व है । (ग) इस नाटक में नवीनताएं क्या है ? उस पर विचार करने से तुरंत ध्यान में आता है कि- विदूषक का पात्र पहले वाले दोंनो नाटकों में जैसा और जितना सक्रिय दिखता है उतना सक्रिय अभिज्ञानशाकुन्तल में नहीं है । बल्कि, इस नाटक में तो विदूषक की अनुपस्थिति को निमित्त बना कर ही नाटक में गति लाई जाती है । (घ) इस नाटक में, काश्मीरी वाचना के अनुसार, पूर्वपरिणीता रानियों की ओर से आनेवाला संघर्ष तनिक भी मुख दिखाता नहीं है । तथा बंगाली, मैथिली, देवनागरी आदि अन्य वाचनाओं के पाठों के अनुसार, उनकी ओर से सूचित किये गये संघर्ष को (अन्तःपुर का कलह या कालकूट, अन्तःपुर की वागुरा आदि शब्दों से) पश्चाद्-भू में ही रखा गया है । (ङ) नाटकों में प्रयुक्त की गई प्रतीक-योजना भी सर्वथा अपूर्व है । राजर्षि विश्वामित्र एवं अप्सरा मेनका से पैदा हुई शकुन्तला अर्ध-दैवी पात्र है, तथापि कालिदास ने तो उसको केवल निसर्ग-कन्या के रूप में ही निरूपित की है । कालिदास ने उसको निसर्ग-कन्या के रूप में ही प्रस्तुत करना चाहा है, इसी लिए उसके लिए रखे गये त्रिविध प्रतीक भी निसर्ग से ही लिये गये हैं । (च) इससे भी एक कदम आगे जा कर, कवि ने इन प्रतीकों को इस नाटक की *केन्द्रवर्ती समस्या*, नाटक के *चरम लक्ष्य* एवं नाटक में निरूपित *द्विविध कौतुक* के साथ भी संकलित किये हैं । इस तरह की वस्तुग्रथना भी अपूर्व, अद्वितीय प्रतीत होती है ।।

[3]

अभिज्ञानशाकुन्तल नाटक के आरम्भिक भाग में ही इस नाटक में रखी गई अभिज्ञानों की समस्या, पुत्र-प्राप्ति रूप चरम लक्ष्य एवं पिता कण्व ने शुरू की सोमतीर्थ-यात्रा का क्या फल आता है ?- उस कौतुक को सूचित करने वाले संकेत रखे गये हैं । जैसे कि, 1) नटी के गीत से ध्वनित होनेवाली अभिज्ञान की समस्या, 2) राजा दुष्यन्त को चक्रवर्ती पुत्र की प्राप्ति होने के आशीर्वाद एवं 3) पुत्री शकुन्तला के किसी अज्ञात दुर्दैव का शमनार्थ पिता का सोमतीर्थ की ओर प्रस्थान करना । इन तीनों (समस्या, लक्ष्य एवं कौतुक) के साथ कालिदास ने क्रमशः 1) भ्रमर एवं कमल-पुष्प का प्रतीक, 2) शिकारी दुष्यन्त के सामने प्रतीकात्मक रूप से हरिणी स्वरूपा शकुन्तला, एवं 3) शकुन्तला का अज्ञात दुर्दैव तथा तीर्थयात्रा का सुफल कहनेवाले विविध पक्षियों के प्रतीकों को रखे हैं । इस तरह की नाट्य-निरूपण विधा अपूर्व भी है और अद्वितीय भी है ।।

1) **नाटक की केन्द्रभूत समस्या के साथ संवलित भ्रमर एवं कमल के प्रतीक** :- नाटक की प्रस्तावना कर रहा सूत्रधार एकत्र हुई अभिरूपभूयिष्ठा परिषद्-का समाराधन करने के लिए नटी को ग्रीष्म ऋतु का गीत गाने की आज्ञा करता है । वह गीत निम्नोक्त हैः-

   क्षणचुम्बितानि भ्रमरैः सुभगसुकुमारकेसरशिखानि ।
   अवतंसयन्ति प्रमदा दयमानाः शिरीषकुसुमानि ।। (काश्मीरी पाठ, 1-4)

   (इस आर्या का पाठ काश्मीरी, मैथिली एवं बंगाली वाचनानुसार है देवनागरी तथा दाक्षिणात्य वाचनाओं में वह- *ईषदीषत् चुम्बितानि0* इत्यादि है ।) **अनुवादः-** "भ्रमरों के द्वारा क्षण के लिए यानी

[6] No conflict, no drama. (किसी भी नाटक में यदि संघर्ष नहीं है, तो वह नाटक ही नहीं है ।)
[7] यद्यपि पश्चिमी नाटकों के संघर्ष (conflict) और संस्कृत नाटकों के अन्तराय (obstacle) में थोडा भेद है ।

केवल एकबार चुम्बित (और उसके बाद तुरंत परित्यक्त) सुन्दर सुभग केसर शिखाओंवाले शिरीष पुष्पों के प्रति दया प्रदर्शित कर रही प्रमदाएं, उनको (अपने कर्णों का) आभूषण बना रही थी, धारण कर रही थी ।"

यहाँ टीकाकार राघव भट्ट कहते हैं कि प्रमदा शब्द बहुवचन में होने के बावजुद वह शकुन्तला का वाचक है । (नाटक में आगे चल कर यह कहा भी जाता है कि शकुन्तला ने अपने कानों में शिरीष के पुष्पों को पहने हैं । सायंकाल होते ही शिरीष के वृक्षों से पुष्प स्वतः गिर जाते हैं, जिनको इकट्ठा करके शकुन्तला अपने कानों में लगाती थी ।) यहाँ, नटी-गीत में जो भ्रमर है वह ऋषि विश्वामित्र है और एकबार क्षणिक चुम्बित शिरीषपुष्प मेनका ही है । पुत्री शकुन्तला अपनी माता के, अथवा कहो कि सकल स्त्री-समुदाय के दुर्भाग्य को लक्षित करती हुई, ऐसे एक बार चुम्बित और तुरंत बाद में परित्यक्त हुए, स्त्रीजीवन की करुणता को ध्यान में लेते हुए शिरिषपुष्पों को जमीन से उठा कर, अपने कानों में आभूषण के रूप में धारण कर रही है । यहाँ अभिव्यक्त हो रही व्यंजना का दीर्घ, दीर्घतर विस्तार समझेंगे तो पुरुषों के द्वारा किये गये एकबार के संयोग के बाद परित्यक्त स्त्री का जीवन तो दुःखमय हो ही जाता है, लेकिन उस एक बार के संयोग से पैदा होनेवाली संतति के पैतृक पहचान की समस्या भी खडी होती है । शकुन्तला और उसके पुत्र भरत के जीवन में अभिज्ञान की ऐसी ही समस्या आकारित हुई है । (वैसे शकुन्तला थी तो राजर्षि विश्वामित्र की पुत्री, यानी वह थी तो एक क्षत्रिय की कन्या, लेकिन समाज में उसकी जो पहचान बनी है वह तो कण्वदुहिता, यानी मुनिसुता के रूप में ।) कवि के मन में इस प्रकार के संतान के अभिज्ञान की समस्या केन्द्र-स्थान में रही होने के कारण ही उन्हों ने इस नाटक के शीर्षक में ही "*अभिज्ञान*" शब्द को रखा है । अभिज्ञान की इस समस्या के मूल में, दुष्यन्त की (पुरुषों की) भ्रमरवृत्ति है । इसी कारण से उन्होंने, इस नाटक में भ्रमर एवं (शिरीष, चूतमंजरी एवं कमल जैसे) पुष्प का युगल हमारे सामने रखा है ।।

इस नाटक के शीर्षक में अभिज्ञान एवं शकुन्तला (या शाकुन्तल) ये दो शब्द डाले हैं, अतः कवि के चित्त में नायिका शकुन्तला का जीवनचरित ही केन्द्र-स्थान में रहा है । अतः शकुन्तला के लिए प्रयुक्त विविध प्रतीकों का मर्मोद्घाटन करने का यहाँ उपक्रम किया है । अब, सब से पहले, शकुन्तला के लिए प्रयुक्त कमल पुष्प का प्रतीक ले कर चर्चा करेंगे । प्रथमांक में शकुन्तला को वल्कल-वस्त्रों को धारण की हुई देख कर, दुष्यन्त ने एक क्षण के लिए सोचा कि यह तो फिके पत्तों में बधा हुआ पुष्प हो ऐसी (शकुन्तला) है । किन्तु दूसरी ही क्षण में, "अथवा" निपात से पक्षान्तर भी प्रस्तुत करता है कि- शैवल से लपेटा हुआ हो तो भी सरसिज (कमल) रमणीय ही लगता है । चन्द्रमा में कलंक होते हुए भी, वही कमल की शोभा को बढानेवाला होता है इत्यादि । यहाँ पर कवि के मन में तो स्पष्ट ही है कि नायिका कमल है, इसी लिए सामने भ्रमर को भी होना चाहिए । इस तरह प्रतीकयुगल की योजना प्रेक्षकों को समझ में आते ही चमत्कृत करनेवाली है । (इसी कृति में अन्यत्र कुन्द, रक्तकुवलय, कमलादि का भी उल्लेख है, लेकिन विस्तारभय से उनकी ओर अंगुलिनिर्देश करके ही रुकते हैं ।)

नायक के लिए प्रयुक्त भ्रमर के प्रतीक को समझने के लिए इस नाटक के सातों ही अंकों में आये भ्रमर के कुल छह सन्दर्भों का विश्लेषण करना होगा :- 1. प्रस्तावना में रखे नटीगीत में आया हुआ भ्रमर ऋषि विश्वामित्र के लिए रखा है ।, 2. प्रथमांक के भ्रमर-बाधा-प्रसंग में, दुष्यन्त भ्रमर की ईर्ष्या करता है[8] और उसका प्रतिस्पर्धी बन कर प्रस्तुत होता है । 3. तीसरे अंक के अन्त में आये अपरिक्षत-

---

[8] (सासूयम्) चलापाङ्गां दृष्टिं स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीं, रहस्ख्यायीव स्वनसि मृदु कर्णान्तिक चरः । .... वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती ।। अभि. शाकु. (देवनागरी पाठ), प्रथमांक 1-20

कोमलस्य0 श्लोक में, दुष्यन्त शकुन्तला को कमल एवं अपने आप को स्वयं षट्पद (भ्रमर) की उपमा देता है । 4. पंचमांक में, गौतमी के द्वारा अवगुण्ठन हटाये गये मुखवाली आपन्नसत्त्वा शकुन्तला को दुष्यन्त गौर से देखता है । यहाँ वह हिमाच्छादित कुन्दपुष्प का उपभोग करने में असमर्थ और साथ में उसका त्याग करने में भी असमर्थ भ्रमर जैसी अपनी मनःस्थिति को वर्णित करता है । यहाँ राजा दुष्यन्त विवेक से संयत हुआ भ्रमर है, क्योंकि सामने खडी हुई शकुन्तला आपन्नसत्त्वा कही गई है । 5. षष्ठांक में, *एषा कुसुमनिषण्णा तृषितापि सती मधुकरी त्वया विना मधु न पिबति*। श्लोक से दुष्यन्त भ्रमर को उपदेश दे रहा है कि- अरे भ्रमर ! पुष्प पर बैठी तेरी मधुकरी को छोड कर, तुम यहाँ वहाँ कहाँ पर भागता है ?, वह तृषातुर होने के बावजुद तेरी प्रतीक्षा करती हुई, पुष्प के रस का पान नहीं कर रही है । यहाँ दुष्यन्त प्रकट शब्दों में भ्रमर का उपदेष्टा बना है । इस सन्दर्भ में, दुष्यन्त ने भ्रमर को मधुकरी के पास नहीं जायेगा तो मैं राजा की हैसियत से तुम्हें दण्ड दूँगा । दण्ड के रूप में कमलोदर में बन्द कर दूँगा- ऐसी धमकी भी दी है । (- यहाँ अन्तिम सन्दर्भ में, कवि ने परिवर्तित हुए दुष्यन्त को निरूपित किया है ।) निष्कर्षतः, समग्र अभिज्ञानशाकुन्तल के उपर्युक्त छहों सन्दर्भों का विश्लेषण करने से मालूम होता है कि भ्रमर इन सभी में एक समान रूप से, व्यभिचरित हो रही मनोवृत्ति वाले दुष्यन्त का प्रतीक नहीं बन सकता है । दूसरे शब्दों में कहे तो, भ्रमर जैसी मनोवृत्तिवाला और भ्रमर की प्रतिस्पर्धा करते हुए दुष्यन्त से शुरू करके, भ्रमर के उपदेष्टा बने दुष्यन्त तक की यात्रा निरूपित की गई है[9] । उस यात्रा का आवर्तन पूर्ण होने तक, अन्तिम चरण में दुष्यन्त ने मधुकरी के प्रति जो अनुक्रोश (=*परदुःखदुःखिता*, इति हैमः) व्यक्त करता है, वह हकीकत में तो, अभिज्ञान स्वरूप अंगूठी मिल जाने के बाद स्मरणपट में सजीवन हो गई शकुन्तला को ही मन में धारण करके बोले गये वचन है । शुरू में दिखाई गई दुष्यन्त की भ्रमरवृत्ति को, कालिदास ने अन्त में भ्रमर के निमित्त से ही दूर कर दी है ।।

[प्रासंगिकतया उस बिन्दु की ओर भी अंगुलिनिर्देश करना आवश्यक है कि कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने जिस हंसपदिका-गीत में प्रयुक्त अभिनवमधुलोलुप भ्रमर के निर्देश को दुष्यन्त का वाचक मान कर, अपनी विवेचना प्रस्तुत की है, वह एकाङ्गी लगने का यह भी कारण कि हंसपदिका-गीत में प्रयुक्त “कमल” शब्द से कौन अभीष्ट है ? उसकी कोई चर्चा ही उन्होंने नहीं की है । श्रीउमाशंकर जोशी भी इस बिन्दु से पूरे अनभिज्ञ है, जिसके कारण वे भी श्रीरवीन्द्रनाथ जी के अनुयायी बन गये हैं ।। इस गीत का मर्म समझना सरल भी नहीं है । क्योंकि इस गीत को गानेवाली हंसपदिका के पक्ष से सोचा जाय तो, अभिनवमधुलोलुप *भ्रमर* वह दुष्यन्त है, *चूतमञ्जरी* के स्थान पर स्वयं हंसपदिका है और वह भ्रमर जो कमलवसतिमात्रनिर्वृत हुआ है (और उसी वजह से वह हंसपदिका को भूल गया है) वह अज्ञात *कमल* तो शकुन्तला है । इस तरह का पहला अर्थ वक्तृबोधव्य = वक्ता के पक्ष से कहा गया अर्थ (क्रमाक-1) है । रंगमंच पर खडे दुष्यन्त को उस गाथा का अर्थ ऐसा समझ में आया है कि- अभिनवमधुलोलुप भ्रमर वह स्वयं है, दूसरी रानी हंसपदिका चूतमञ्जरी है और कमलवसतिमात्र-निर्वृत शब्द से उसको रानी वसुमती का बोध होता है । क्योंकि उसकी मति तो दुर्वासा के शाप से व्यवहित हो चूकी थी । अत एव वह बोलता है कि- मैं समझता हूँ कि रानी वसुमती को लक्षित करते

[9] कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर और श्रीउमाशंकर जोशी ने केवल हंसपदिका-गीत को ही ध्यान में रख कर, भ्रमर को सार्वत्रिक रूप से दुष्यन्त का प्रतीक मान लिया है और दुर्वासा के शाप का प्रयोजन स्पष्ट करने का बुद्धिविलास दिखाया है । यदि समग्र नाटक के उपर्युक्त छहों सन्दर्भों को टटोलने का प्रयास किया होता, तथा षष्ठांक के सन्दर्भ को सही मायने में समझा होता, तो शायद उनको अलग ही काव्यार्थ, काव्यमर्म हाथ लगा होता ।

हुए मुझे ऐसा टोना हंसपदिका ने मारा है । वह विदूषक से ऐसा संदेश भी भीजवाता है कि- *सम्यग् उपालब्धोऽस्मि* । दुष्यन्त के पक्ष से निकलनेवाला यह दूसरा अर्थ श्रोतृबोधव्य (क्रमांक-2) है । किन्तु रंगमंच के सामने बैठे प्रेक्षक जब इस गाथा को सुनेंगे तो उनके मन से तीसरा अर्थ भी निकलेगा । क्योंकि प्रेक्षकों तो मालूम है कि दुष्यन्त-शकुन्तला को दुर्वासा का शाप लगा हुआ है । जिसके कारण हस्तिनापुर के राजद्वार पर आ रही शकुन्तला को, जिसको प्रतीकात्मक रूप से इस ध्रुवा में हंसपदिका कहा गया है, उसको वह भूल गया है - इस विलक्षण अर्थ का यहाँ ध्वनन हो रहा है[10] । यदि यह गाथा प्रावेशिकी ध्रुवा हो सकती है तो यह तीसरा अर्थ एकदम स्वाभाविक एवं संभवित लगता है । यह प्रेक्षकनिष्ठ-श्रोतृबोधव्य (=प्रेक्षक रूप श्रोतृपक्ष में प्राप्त होनेवाला) अर्थ (क्रमांक-3) कहा जायेगा । इस तरह से हंसपदिका-गीत का अर्थ विवेचकों के लिए सदैव विवादास्पद ही रहा है । टीकाकार घनश्याम ने इस गीत के अर्थघटन के बारे में लिखा है कि- महाभारत के युद्ध में भीम ने रणसंग्राम में विकीर्ण हस्तियों के अस्थपिंजरों को उठा कर, आकाश में फेंके थे, जो अद्यावधि वहीं अन्तरिक्ष में ही भ्रममाण दिखते हैं । वैसे ही, हंसपदिका-गीत का अर्थघटन करनेवाले सभी व्याख्याकार भी यहाँ वहाँ घुमते रहे हैं[11] । इस तरह यदि कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे प्रबुद्ध व्याख्याकार भी इस गीत में आये हुए केवल "अभिनवमधुलोलुप" शब्द को देख कर, मनभावन अर्थ करने को दौड जाय तो उसमें आश्चर्य का अनुभव करने की बात नहीं है । तथापि यह भी हकीकत है कि इस गीत में आये हुए कमल शब्द से किस व्यक्ति का बोध व्यंजित हो रहा है ?- उसका उत्तर दिये बिना समग्र कृति के अर्थघटन या मर्म को अवगत करने की जल्दबाजी नहीं की जा सकती । अतः, जब हम कमल को शकुन्तला के प्रतीक के रूप में देख कर, इस चर्चा को अग्रेसारित करते हैं तब इस हंसपदिका-गीत का अर्थ साकल्येन देना होगा । तदनुसार, उपर्युक्त पहला अर्थ ही लेना तर्कसंगत सिद्ध होता है । क्योंकि शकुन्तला का प्रेम प्राप्त करने के बाद, दुष्यन्त किसी अन्य रानी के आवास पर जाता नहीं था, जिसकी शिकायत हंसपदिका कर रही थी । दुष्यन्त रूप भ्रमर किसी अज्ञात कमल में अब आबद्ध हो चूका है- उसकी गवाही तो यह हंसपदिका-गीत ही दे रहा है । तथा रंगमंच पर स्थित नायक तो शापग्रस्त मतिवाला है, अतः उसको समझ में आ रहा अर्थ (क्रमांक-2) परमार्थ में लेना उचित नहीं है । एवञ्च, पूर्वोक्त तीसरे अर्थ का मार्मिक सन्दर्भ देखते हुए नाट्यगत (=विस्मृत चूतमञ्जरी स्वरूप शकुन्तला) अर्थ ही दे रहा है, जिसकी ओर कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ जी का ध्यान गया ही नहीं है- वह बडे दुःख की बात है । सुज्ञेषु किं बहुना ? । अस्तु ।।]

2) **नाटक का अन्तिम लक्ष्य और उसके साथ सम्बद्ध हरिण का प्रतीक** :- नाटक के आरम्भ में मृगयाविहारी राजा दुष्यन्त का प्रवेश होता है । उन्हों ने कण्वाश्रम के मृग पर शरसन्धान किया था, उसी क्षण मृग एवं शिकारी के बीच में "*न हन्तव्यो न हन्तव्यः, आश्रममृगोऽयम्*" ऐसा बोलता हुआ एक वैखानस उपस्थित होता है । विशेष में उसने कहा- "राजा का बाण तो आर्त व्यक्तियों के परित्राण के लिए होना चाहिए, निर्दोष पशुओं को मारने के लिए नहीं" । यह सुन कर राजा ने भी अपना बाण प्रतिसंहृत कर लिया । अतः वैखानस ने भी राजा को आशीर्वचन देते हुए कहा कि- आपको सर्वथा चक्रवर्ती पुत्र की

---

[10] मैथिली पाठ के टीकाकार शंकर ने ऐसी ही व्यंजना सोची हैः- अथ च शकुन्तलाकृताक्रोशसूचनम् । हंसः शकुन्तः,तं लाति, ला आदाने धातुः, आदत्ते इति हंसवती शकुन्तलेति । (मैथिलपाठः, पृ. 254)

[11] अत्र संविधाने भीमेन प्रेषिता गजादिवदद्यापि परिभ्रमन्ति केचिदन्ये व्याख्याकाराः । - *अभिज्ञानशाकुन्तलम्,* घनश्यामकृत-सञ्जीवन-टिप्पणसमेतम्, सं. श्रीमती पूनम पंकज रावळ, सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदावाद, 1997, प. 112.

प्राप्ति हो । अभिनवगुप्तपाद ने "यही (पुत्रप्राप्ति) नाटक का फल है" (ना.शा. 19-22) ऐसा कहा है । नाटक का घटनाचक्र देखते हुए प्रतीत होता है कि दुष्यन्त ने भले ही आश्रममृग को नहीं मार गिराया, किन्तु प्रथमांक के अन्त तक उसने शकुन्तला को प्रेमाविद्ध कर ही दिया है । यहाँ स्मरणीय एक बिन्दु हैः- दुष्यन्त को पुत्रप्राप्ति के आशीर्वाद "अनागस आश्रममृग" को नहीं मारने की शर्त (या निमित्त) पर दिया गया है । एवञ्च यह भी ध्यातव्य है कि कालिदास ने एक शिकारी के सम्मुख शकुन्तला स्वरूपा हरिणी को प्रस्तुत की है । शकुन्तला के लिए प्रयुक्त हिरन का प्रतीक इतने व्यापक पैमाने पर कवि ने उपयोग में लिया है कि उसके निमित्त से शकुन्तला की केवल जीवन-कहानी ही नहीं कही गई है, बल्कि उसके निमित्त से उसके भावि का कथन एवं उन दोनों के प्रेम-विकास का परम प्रकर्ष भी निरूपित किया गया है ।

शकुन्तला को दी गई राजमुद्रा धीवर प्रसंग के द्वारा दुष्यन्त को वापस मिलती है, और उस तरह का अभिज्ञानाभरण मिल जाने पर दुर्वासा का शाप-निवृत्त हो जाता है । जिससे षष्ठांक में राजा की विरहावस्था शुरू होती है । इस सन्दर्भ में वह सखियों सहित की शकुन्तला का चित्र जिसमें चित्रित किया था उस फलक को मंगवाता है । विदूषक राजा को पूछता है कि तीन सखियाँ तो इसमें आलिखित कर ली हैं, फिर अब क्या अवशिष्ट रह गया है कि जो आप उसमें जोडना चाहते हो ? इस प्रश्न के उत्तर में दुष्यन्त ने निम्नोक्त श्लोक बोला हैः-

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निषण्णचमरा गौरीगुरोः पावनाः ।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यधः
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ।। 6-17।।

(अनुवादः-) इस (चित्र) में बहते जलप्रवाह वाली मालिनी नदी और उसकी वालुका में बैठे हुए दो हंसपक्षियों का युगल, तथा उसके चौ पास मा गौरी के गुरु (पिता हिमालय) की पावनकारिणी उपत्यकाओं के भागों को चित्रित करना है । जहाँ चमर बैठे हो एवं जिनकी शाखाओं पर (शकुन्तला के) वल्कल लटकते हो ऐसे वृक्ष बनाना चाहता हूँ । तथा इन वृक्षों के नीचे कृष्णमृग के नोंकिले शृङ्ग पर अपना वाम नेत्र खुजलाती हो ऐसी एक मृगी को बनाना चाहता हूँ ।।

इस श्लोक को सुनते ही समझ में आ जाता है कि अब विरही दुष्यन्त के मन में (प्रथमांक में वर्णित) कण्वाश्रम एवं वहाँ प्रस्फुटित हुआ प्रेम पुनः जाग उठता है । वहाँ के सभी स्थानों की स्मृति जीवन्त हो गई है । किन्तु हमें प्रश्न होता है कि दुष्यन्त के मन में कृष्णमृग के शींग पर अपना वामनेत्र खुजलाती हुई मृगी बनाने की चाहत कहाँ से पैदा हुई होगी ? क्यूँ पैदा हुई है ?। इन प्रश्नों के उत्तर दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के लघुपाठों में नहीं मिलते हैं । (क्योंकि इस नाटक को रंगमंच पर अल्प समयावधि में अभिनीत करने के लिए दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचनाओं के संक्षिप्ततर लघुपाठों को बनाये गये हैं[12] ।) इसके लिए तो काश्मीरी[13], मैथिली एवं बंगाली वाचनाओं के पाठों को देखना होगा । इन वाचनाओं में सुरक्षित रहे तीसरे अंक के बृहत्

---

[12] द्रष्टव्यः-*अभिज्ञानशाकुन्तल का पाठपरामर्श*। वसन्तकुमार म. भट्ट, आर्य गुरुकुल, माउन्ट आबु, 2015, एवं देवनागरी वाचना के पाठ में संक्षेपीकरण के पदचिह्न । वसन्तकुमार म.भट्ट, *नाट्यम्* पत्रिका, (अंक 71-74), सं. श्री राधावल्लभ त्रिपाठी, सागर, 2011-12, पृ. 27 से 57.

[13] द्रष्टव्यः- *अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्*। (काश्मीरी वाचनानुसारी), समीक्षित पाठसम्पादन, सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, प्रका. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2018.

पाठ में से जानने को मिलता है कि- (दोनों सहेलियाँ रंगमंच से निकल जाती हैं, उसके बाद) दुष्यन्त एवं शकुन्तला के एकान्त मिलन का विस्तृत दृश्य शुरू होता है। जिसमें दुष्यन्त शकुन्तला के लिए "जीवितेश्वरी" जैसे शब्द का उपयोग करता है। तथा शकुन्तला को अपने पास में बिठा कर, उसके हाथ में मृणालवलय पहनाता है। (यहाँ पर, शकुन्तला भी दुष्यन्त के लिए "आर्यपुत्र" जैसा शब्द बोलती है[14] ।) उसके बाद, वह शकुन्तला से पूछता है कि- प्रिये ! यह मृणालवलय तुम को कैसा लगता है ?, इस प्रश्न का कोई उत्तर शकुन्तला दे पावे, उससे पहले ही पवन की लहर चली और शकुन्तला के नेत्र में पुष्प की परागरज गिरती है और उसकी दृष्टि कलुषित हो जाती है। उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हुए हैं ऐसा देख कर कहाः- "हे सुन्दरी ! तुम मेरे पास आ जाव, मैं मेरे वदनमारुत से तुम्हारे नेत्र को निर्मल कर देता हूँ, प्रमार्जित कर देता हूँ" । उस नैसर्गिक प्रेमसहचार की स्मृति हो आने पर, षष्ठांक में दुष्यन्त ने जब शकुन्तला के चित्र की पार्श्वभूमि में जो चित्र बनाने का संकल्पित किया है उसमें *"कृष्णमृग के नोंकिले शींग पर अपना वामनेत्र खुजलाती हुई मृगी"*बनाने की चाहत हो आयी है। इस श्लोक के शब्दों से जो व्यंग्यार्थ निकल रहा है वह दुष्यन्त के हृदयगत मर्म स्थान को उद्घाटित कर रहा है। जैसा कि, एक मृगी के लिए मृग कितना विश्वनीय होना चाहिए कि मृगी जब उसके नोंकिले शींग पर अपने कोमल नेत्र को खुजलावे तब वह तनिक भी हिलेगा नहीं, मृगी के नेत्र कहीं क्षतिग्रस्त न होने पावे- उसका वह ध्यान रखेगा। वह निश्चल हो कर ही खडा रहेगा- उस तरह की मृगी के अन्तःकरण की प्रतीति होगी तब ही वह उसके शींग पर अपने नेत्र को खुजलायेगी। यहाँ पर दुष्यन्त को जो विश्वसनीय मृग का चित्र बनाने की चाहत हुई है, वह मृग अन्य कोई और व्यक्ति नहीं है, वह तो स्वयं दुष्यन्त ही है। यहाँ मृग के मिष से दुष्यन्त ने स्वयं अपने भावि दाम्पत्य जीवन का ही चित्र आलिखित किया है।

अभिज्ञानशाकुन्तल का नाट्यकार्य (Action of the play) को, यानी समग्र नाटक के घटनाचक्र की परिणति को, समझने के लिए इस सन्दर्भ को ध्यान में लेना न केवल जरूरी है, बल्कि अनिवार्य है। यह श्लोक नाटक का हृदयस्थान है। इस श्लोक से सूचित होता है कि अंगूठी मिल जाने के बाद, विरहावस्था में संतप्त हो रहे दुष्यन्त को शकुन्तला का अब सही परिचय एवं आभ्यन्तर (अनागस हिरन का) अभिज्ञान मिल गया है। आश्रम के "इस मृग" का हनन नहीं करना चाहिए, उसका तिरस्कार, या प्रत्याख्यान नहीं करना चाहिए। बल्कि उसके जीवन को तो विश्वसनीय आधार, सहारा देना चाहिए, इस बात का अहेसास हो गया है। जीवन की इस नवीन समझदारी उपर्युक्त श्लोक (6-17) की अन्तिम पंक्ति से अभिव्यंजित हो रही है। प्रथमांक में नवमालिका नाम की लता, शकुन्तला ने जिसका नाम वनज्योत्स्ना रखा था, वह वनज्योत्स्ना सहकार (आम्रवृक्ष) की सहकारवधू बनी है- ऐसा कहा गया है, (यानी उसको सहकार वृक्ष का अवलम्बन मिलने की बात कही गई है), वैसा संश्लिष्ट जीवन यहाँ चरितार्थ होता दिख रहा है।

---

[14] दाक्षिणात्य एवं देवनागरी पाठों के अनुसार तो दोनों सहेलियाँ रंगमंच से चली जाने के बाद, केवल छह या सात छोटी छोटी उक्तियों के अनन्तर दुष्यन्त ने शकुन्तला के अधरोष्ठ का रसपान करने की मांग की है। तथा गान्धर्व-विवाह के लिए उकसाता है। यहाँ पर, काश्मीरी आदि बृहत्पाठ वाली तीनों वाचनाओं के जिन दो दृश्यों का वर्णन किया जाता है, उनको किसी अज्ञात नटमण्डली ने दाक्षिणात्य एवं देवनागरी वाचना के पाठ से हटा दिये हैं। ये दोनों दृश्यों में गद्य उक्तियों के अलावा बारह से लेकर चौदह श्लोकों वाला पाठ्यांश था, जो पूर्वोक्त बृहत्पाठ वाली तीन वाचनाओं में सुरक्षित मिलता है।

शिकारी हो कर दुष्यन्त को मृग मिलेगा तो भी वह मृत या घायल हुआ मृग ही मिलेगा, अर्थात् वह शिकारी के रूप में तो हरिणी स्वरूपा अनागस शकुन्तला को कदापि प्राप्त नहीं कर सकेगा। उस हरिणी स्वरूपा भोली (निष्पाप, निर्दोष) शकुन्तला को प्राप्त करने के लिए तो उसको विश्वसनीय, "सगन्ध" मृग ही बनना पडेगा। क्योंकि दुष्यन्त ने, पंचमांक में, टोना मारने के लिए "*सर्वः सगन्धेषु विश्वसिति*" (समान गन्धवाले पशु समान गन्धवाले अन्य पशु में ही विश्वास करते हैं, तुम दोनों भी तो जंगल में बसनेवाले हो न ?, इस लिए आप दोनों एक-दूसरे में विश्वास करते हैं।) ऐसा वाक्य सुनाया था। लेकिन आज वही परम सत्य पूर्णतया उसको आत्मसात् हो गया है। अनागस हरिणी जैसी प्रेमपूर्णा पत्नी शकुन्तला का और अपना ऐसा सगन्ध मृग स्वरूप बने रहने का अभिनव "अभिज्ञान" अधिक सूक्ष्म है, जो एक अंगूठी से मिले स्थूल अभिज्ञान (=यह मेरी परिणीता पत्नी है- उस तरह के अभिज्ञान) से उन्नततर है। कालिदास को दाम्पत्य जीवन का ऐसा सूक्ष्म अभिज्ञान दिखाना अभीष्ट है, जिसको उन्हों ने चित्रस्थ हरिणी और हरिण के प्रतीक से, कलात्मक ढंग से, व्यंजित किया है[15]।।

3) **नाटक में दो कौतुकों का आधान एवं शकुन्तला के लिए प्रयुक्त बहुविध पक्षियों के प्रतीक** : शकुन्तला के लिए प्रयुक्त कमल एवं हिरन के प्रतीकों का परामर्श करने के बाद, उसके लिए प्रयुक्त विविध पक्षिओं के प्रतीकों पर भी विचार करेंगे। कालिदास ने नाटक के आरम्भ में ही कहा है कि पिता कण्व अपनी पुत्री शकुन्तला के किसी दुर्दैव का शमन करने के लिए सोमतीर्थ की यात्रा पर निकल गये हैं। इसको सुन कर प्रेक्षकों के मन में लम्बे समय तक (प्रथमांक से लेकर सप्तमांक पर्यन्त) निरन्तर बने रहनेवाले दो कौतुकों का आधान हो जाता है। यहाँ पर प्राथमिक दृष्टि से सोचे तो दुर्वासा का शाप ही शकुन्तला के भावि में छिपा हुआ दुर्दैव है[16]। दूसरी ओर, शचीतीर्थ में वन्दन करते समय शकुन्तला के हाथ से निकली अंगूठी को मछली ने निगल लिया था, जिसको पुनः देख कर विस्मृत हुई शकुन्तला दुष्यन्त को फिर से याद आ जाती है, वह पिता कण्व की सोमतीर्थ-यात्रा का सुफल है। यद्यपि यह सच होते हुए भी कालिदास की सर्जकचेतना ने जब निसर्गकन्या शकुन्तला की जीवनकहानी सर्वतो भावेन निसर्ग के प्रतीकों से ही प्रस्तुत करने की नाट्यशैली का अवलम्बन किया है, तब शकुन्तला के दुर्दैव को तथा सोमतीर्थ की यात्रा के फल को भी निसर्ग के प्रतीकों से ही निरूपित किया जाना चाहिए ऐसी अपेक्षा प्रेक्षकों के मन में रहेगी ही। अब, उसका प्रतिपादन किया जाता हैः-

"शकुन्तला" नाम यौगिक है। मैथिल वाचनानुसारी अभिज्ञानशकुन्तलम् पर शंकर ने रसचन्द्रिका नाम की टीका में लिखा है कि महाभारत में आदिपर्व के शकुन्तलोपाख्यान में शकुन्तला के जन्म से जुडी कहानी लिखी गई है। उसमें बताया गया है कि- : *निर्जने भुवने यस्मात् शकुन्तैः परिवारिता।*

---

[15] नाटक के आरम्भ में दुष्यन्त को पुत्रप्राप्ति के आशीर्वाद दिये गये है, उसका चारितार्थ्य दिखाने से पहले, वह आशीर्वाद आश्रम के मृग को नहीं मारने की शर्त, या निमित्त से दिये गये थे। उस बात को स्मरणपट में ला कर देखेंगे तो, उपर्युक्त स्वरूप का (हरिणी के प्रतीक द्वारा व्यक्त किया हुआ) शकुन्तला का आभ्यन्तर अभिज्ञान नायक को षष्ठांक में मिलता है। उसी के बाद ही, सप्तमांक में दुष्यन्त को माता शकुन्तला सहित का पुत्र सर्वदमन भरत मिलता है, वह ध्यातव्य है। इति दिक्।।

[16] दुर्वासा का शाप ही दुर्दैव था, कण्व जिसके लिए सोमतीर्थ की यात्रा पर निकल गये थे। शकुन्तला ने भी स्वयं शाप को अपने गतजन्म के किसी पुराकृत कर्म का फल कहा है। कवि ने उसको किसी अपराध के दण्ड रूप में प्रस्तुत नहीं किया है। शकुन्तला को तो सप्तमांक के अन्त तक शाप की जानकारी नहीं थी, तो फिर प्रायश्चित या पश्चात्ताप करने का सवाल ही नहीं है।

शकुन्तलेति नामास्याः कृतं चापि ततो मयेति[17] ।। अर्थात् पुत्री शकुन्तला को जन्म दे कर माता मेनका तुरंत स्वर्ग में वापस पहुँच गई थी । धरती पर पडी बालकी को रुदन करती हुई सुन कर, वन-उपवन के पक्षिओं ने उसको घेर लिया और कलरव करने लगे । जिसको सुनते ही नज़दीक में रहते कण्व मुनि वहाँ पहुँचते हैं । उन्होंने उस बालकी को शकुन्तों से घिरी हुई, परिरक्षित की गई देख कर उस कन्या का नाम "शकुन्तला" ऐसा रख दिया । इस तरह से निसर्ग-कन्या के रूप में प्राप्त हुई शकुन्तला की जीवनकथा निसर्ग के प्रतीकों से ही कही जानी चाहिए ऐसा कालिदास की सर्जक-प्रतिभा ने सोच लिया है । निदर्श के रूप में – (क) तीसरे अंक में, नायक-नायिका का जहाँ गान्धर्व-विवाह वर्णित है, वहाँ सायंकाल होते ही दोनों को अलग करने के लिए नेपथ्योक्ति से कहा जाता है कि- चक्रवाकवधू, तुम अपने सहचर से बिदाई ले लो, क्योंकि रात्रि उपस्थित हो गई है । इस तरह से यहाँ चक्रवाक पक्षी का उपयोग किया गया है । (ख) चतुर्थांक में, पतिगृह की ओर कदम आगे बढा रही शकुन्तला को मार्ग के मध्य में खडा एक चक्रवाक-युगल दृष्टिगोचर होता है । एक चक्रवाक, जो आश्रम से बिदाई ले रही शकुन्तला को देखने में मग्न था, उसको इसकी चक्रवाकी पुकार रही है । किन्तु चक्रवाक उसको प्रत्युत्तर नहीं देता है । यद्यपि वह चक्रवाक पास में ही खडा था, और केवल एक नलिनीपत्र से अन्तर्हित था, तथापि वह चक्रवाकी उत्कंठित हो कर रुदन करने लगती है । इसको देख कर, शकुन्तला बोलती है कि- *दुष्करमहम् करोमि* । इस प्रसंग की योजना बहुत मार्मिक है । शकुन्तला को आर्षद्रष्टा पिता कण्व ने एवं उसकी दोनों सहेलियों ने यह नहीं बताया था कि तुम्हें दुर्वासा का शाप मिला है । लेकिन शकुन्तला यदि निसर्ग-कन्या है तो निसर्ग के प्रतिनिधिभूत इस चक्रवाक-युगल ने तो शकुन्तला को सूचित कर ही दिया है कि वह एक दुष्कर कार्य करने जा रही है । ससुराल पहुँचने पर, उसका पति भी उसको प्रत्युत्तर नहीं देगा । (शकुन्तला "*दुष्करमहम् करोमि*" इस वाक्य से उस गूढ भविष्य को समझने की, जानने की मिथ्या कोशिश करती है ।) (ग) दुर्वासा से शापित हुई शकुन्तला अन्त तक बीलकुल अनभिज्ञ रहती है । उसकी अंगुलि से दुष्यन्तस्य नामधेयाङ्किता राजमुद्रा निकल कर जल में, किसी मत्स्य के उदर में निमग्न हो जाती है । शापव्यवहित मतिवाला दुष्यन्त उसका प्रत्याख्यान करने पर तुला है । अब शकुन्तला के पास, दुष्यन्त से उसने विवाह किया हो इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण दिखला नहीं सकती है । उसके पास, दुष्यन्तपरिणीता पत्नी के रूप में दिखाने के लिए कोई अभिज्ञान है ही नहीं । तब वह पति-पत्नी की एक आपसी, एकान्त में घटित एक बात, सुनाती है । लेकिन वह प्रयास न केवल व्यर्थ सिद्ध होता है, बल्कि दुष्यन्त शकुन्तला को "परभृतिका" (जो अपने अण्डे को किसी दूसरे पक्षी के घोंसले में छोड आनेवाली कोकिला) कह देता है । यद्यपि शकुन्तला तो दुष्यन्त का ही संतान अपने गर्भ में लेकर आयी थी, तथापि उसको पति के मुख से ही "परभृतिका" जैसा शब्द सुनना पडता है । इस तरह से, पिता कण्व ने जिस दुर्दैव की आशंका की थी वह घिनौने आरोप से भरा "परभृतिका" शब्द-प्रयोग है । यहाँ पर ध्यातव्य है कि शकुन्तला के मस्तक पर मंडरा रहा दुर्दैव भी परभृतिका (कोकिल) पक्षी के निमित्त से प्रकट हुआ है । (घ) अब देखना है कि सोमतीर्थ की यात्रा का फल किस रूप में प्रकट होता है ? । षष्ठांक में माछीमार से राजमुद्रा मिल जाने पर दुष्यन्त को शकुन्तला याद आ जाती है । अब विरह में संतप्त राजा शकुन्तला के आधे-अधुरे बनाये चित्र में पूर्तता करने के लिए क्या क्या सोच रहा है, वह उपर्युक्त श्लोक (6-17) में कहा है । उसमें जैसे

---

[17] *अभिज्ञानशकुन्तलम्*, (मैथिल-पाठानुगम्), (शंकर-नरहरिकृताभ्यां टीकाभ्यां सहितम्), सं. रमानाथ झा, प्रकाशन- मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1957, पृ. 177.

बताया है कि चित्रस्थ शकुन्तला के आसपास में जल से परिपूर्ण मालिनी नदी बनानी है एवं उसकी बालुका में बैठे हंस-हंसी का युगल बनाना है । हम जानते हैं कि भारतीय संस्कृति में हंसयुगल को जीवात्मा एवं परमात्मा का प्रतीक माना गया है । इस सन्दर्भ में देखेंगे तो, इस हंसमिथुन के प्रतीक के द्वारा विरही राजा अपने भावि दाम्पत्य जीवन में शकुन्तला के साथ मिल कर, अद्वैत के रूप में रहने का संकल्प उद्घोषित कर रहा है । यह है पिता कण्व की सोमतीर्थ की यात्रा का सुफल ! (ङ) निसर्गकन्या शकुन्तला की जीवनकहानी जब विविध पक्षिओं के प्रतीक से ही निरूपित करने का कालिदास ने मार्ग अपनाया है तब, अब हमें यह देखना है कि ये सारी पक्षिओं की हारमाला का चरम प्रकर्ष कहाँ, कैसे प्रकट होता है ? इसके लिए हमें सप्तमांक को देखना चाहिए । दुष्यन्त-शकुन्तला का पुत्र बाल्यावस्था में खेलने के लिए एक सिंहशावक को पकड कर ले आया है । उसकी जृम्भा को खुलवा कर, उसके दांत को वह गिनने की चेष्टा करता है । इस विचित्र बालक्रीडा को देखते ही, मारीच ऋषि के आश्रम की दो कन्याएं संत्रस्त हो जाती है और किसी भी तरह से उस सिंहबाल को मुक्त करवाना चाहती हैं । वे सिंहबाल के विकल्प में उसके हाथ में मृत्तिका-मयूर देती है ! देखिए यहाँ पर भी, कालिदास की सर्जकचेतना ने शकुन्त-ला के पुत्र के हाथ में मयूर पक्षी को ही स्थापित किया है ! यह योजना साभिप्राय है । मयूर हमारा राष्ट्रिय पक्षी है, जो कालिदास के समय से निरन्तर बना रहा है, जिस चक्रवर्ती बनने वाले भरत के नाम से इस देश का नाम भारत प्रचलन में आया है, वह चक्रवर्ती स्वयं राष्ट्रिय पक्षी मयूर से खेलता हुआ संवर्धित हुआ दिखाना उपयुक्त है, साभिप्राय है ।

इस तरह से, पहले चक्रवाक पक्षी, उसके बाद परभृतिका, फिर हंसयुगल और अन्त में राष्ट्रिय पक्षी मयूर को प्रतीकात्मक रूप से प्रयुक्त करके हमारे कविकुलगुरु कालिदास ने अपनी सर्जकप्रतिभा का नवोन्मेष प्रकट किया है, और इस तरह से उसको इसी कृति में पराकाष्ठा तक भी पहुँचाया है । इस नाटक के शीर्षक में शकुन्त-ला का नाम रख कर, कवि ने "शकुन्तों से घीरी, सुरक्षित की गई निसर्ग-कन्या शकुन्तला की जीवनकहानी भी विविध पक्षियों के प्रतीकों से साद्यन्त प्रस्तुत की है, क्योंकि उनकी क्रान्तद्रष्टि कहती है कि निसर्गकन्या शकुन्त-ला की जीवनकहानी पक्षिओं से पृथक् करके कथमपि नहीं कही जा सकती है । इन पक्षिओं के प्रतीकों को सम्यक् तया समझने से ही हम कवि की क्रान्तदृष्टि को समझ सकेंगे । तथा इस नाटक में प्रयुक्त हुए सारे प्रतीक निसर्ग से लिए गये हैं इसी लिए वह सार्वभौम और सार्वकालिक बना है । जिससे ही कालिदास विश्वकवि की कोटि में स्थापित हुए हैं ।।

[4]

कालिदास की सर्जकचेतना की आलोचना करते समय, इस नाटक के बाह्य-शिल्प की भी चर्चा होनी अनिवार्य है । इस नाटक में सात अंकों की योजना की गई है । उन सातों अंकों की बुनावट एक कण्ठहार जैसी है ऐसा प्रॉफे. श्री परमानन्दभाई दवे ने बताया है । उन्होंने बताया है कि- नाटक के अंकरचना में एक सुन्दर भात उभर कर सामने आ रही है । जैसे कि, प्रथम, तृतीय,पंचम एवं सप्तम अंकों में नायक तथा नायिका दोनों ही रंगमंच पर प्रस्तुत होते हैं । द्वितीय एवं षष्ठांक में केवल नायक तथा विदूषक ही रंगमंच पर आते हैं । तथा चतुर्थांक में तो केवल नायिका, (अथवा कहो कि कण्वदुहिता) पुत्री शकुन्तला ही रंग पर उपस्थित होती है[18] । यानी सातों अंकों

[18] द्रष्टव्यः- *महाकवि कालिदास*, सं. प्रिन्सीपाल श्री यशवन्त शुक्ल, प्रकाशक- गुजरात विद्यासभा, अमदावाद-1963, (पृ. 38 से 49) । प्रॉफेसर श्री परमानन्दभाई दवे के शोध-आलेखों का संग्रह देखने के लिए *संस्कृत-नाट्यमण्डपे परमानन्दः* । सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, प्रका. गुजरात संस्कृत साहित्य अकादेमी, गांधीनगर, 2010.

में मध्येमणि-न्याय से विराजमान चतुर्थांक की शोभा अलग ही है। इस तरह की अंकों की कलात्मकता का विस्तार करते हुए कहना होगा कि नाटक में एक ओर पूर्वार्ध के तीन अंकों में दुष्यन्त-शकुन्तला का संभोगशृंगार निरूपित किया गया है, तो अन्तिम तीन अंकों में विप्रलम्भ-शृंगार एवं पूर्ण मिलन वर्णित है। इस तरह से द्विधा विभाजित नाटक के बीच में, जो मध्येमणि-न्याय से विराजमान है वह चतुर्थांक है। "*तत्रापि चतुर्थोऽङ्कः*"– इस पंक्ति का रहस्य इसी मार्ग पर चलने से अवगत हो सकेगा। इस चतुर्थांक में किसी पुरुष एवं स्त्री का प्रेम-प्रसंग नहीं, किन्तु पिता-पुत्री का वात्सल्य-संसिक्त स्नेह ही निरूपित हुआ है। किसी भी कन्या को शुद्ध, सहज पहला प्रेम अपने पिताजी से ही प्राप्त होता है, जो अद्वितीय ही होता है। दुनिया के सभी कविओं ने जिस प्रेम का निरूपण किया है, वह केवल स्त्री-पुरुष का प्रेम ही है। कालिदास के सिवाय किसी भी अन्य कविने पिता-पुत्री के प्रेम को अपने काव्य का विषय नहीं बनाया है। पूरे साहित्य-संसार में एक मात्र कालिदास ने ही ऐसे विशुद्ध सहज प्रेम का काव्यात्मक नाट्यरूपान्तर किया है। इसी लिए "*तत्रापि चतुर्थोऽङ्कः*" पंक्ति प्रसिद्ध हुई है।।

[4]

अभिज्ञानशाकुन्तल में, मानवजीवन में अनुभूत होनेवाले प्रेम का इस तरह से अखिलाई-पूर्ण निरूपण किया गया है वह देखने के बाद, इसी नाटक के बाह्य शिल्प की भी अभिनव समीक्षा करनी चाहिए। इस नाटक के घटनाचक्र को प्रस्तुत करने के लिए कालिदास ने एक विशिष्ट नाट्यशैली आजमाइ है। नाट्यशैली की एक विशिष्टता को हमने नाटक के लक्ष्य, समस्या एवं कौतुक के साथ सुसम्बद्ध *प्रतीकों की शृङ्खला* से देखा है, परखा है। दूसरी ओर देखें तो, कवि ने इस नाटक में *रूप-प्रतिरूप की योजना* करके, वस्तुगूम्फन किया है। कालिदास ने इस नाटक के पूर्वार्ध में जिस किसी रूप को रखा है, उसका प्रतिरूप हमें उत्तरार्ध में देखने को मिलता है! इस तरह की नाट्यनिरूपण शैली समग्र नाटक में साद्यन्त देखाई देती है। तद्यथा (1) प्रथमांक में, कण्वाश्रम में शिकारी राजा का प्रवेश होता है, तो सप्तमांक में उसी के सामने मारीच ऋषि के आश्रम में दानवहन्ता इन्द्रसखा दुष्यन्त का प्रवेश होता है। (2) प्रथमांक में, "*न हन्तव्यो, न हन्तव्यः। आश्रममृगो-ऽयम्*।" इस रूप के सामने सप्तमांक में शकुन्तला का पुत्र सर्वदमन सिंहबाल को परेशान कर रहा है- ऐसा प्रतिदृश्य रखा है। वहाँ मारीच ऋषि के आश्रम की तापसियाँ भी गभराहट में बोलती हैं कि- "*मा खलु, मा खलु चापलं कुरु*"। इस तरह का प्रतिरूप सप्तमांक में रखा गया है। (3) प्रथमांक में, दुष्यन्त शान्त आश्रम में प्रविष्ट होते ही उसका दक्षिण हस्त में स्फुरण होता है। उसके सामने, सप्तमांक में भी, मारीच ऋषि के आश्रम में प्रविष्ट होते ही दुष्यन्त बाहुस्पंदन का अनुभव करता है। इस तरह से यहाँ एक रूप (दृश्य) के सामने दूसरा प्रतिरूप (प्रतिदृश्य) खडा किया गया है। (4) प्रथमांक में भ्रमर (पद्मिनी) शकुन्तला के वदनकमल पर गुञ्जन करता हुआ घुमने लगता है। तब दुष्यन्त उसकी असूया करता है एवं प्रतिस्पर्धी बन कर, उसको दूर हटाने के लिए दौड पडता है। इस रूप के सामने कवि ने दूसरा प्रतिरूप षष्ठांक में खडा किया है। वहाँ पर, चित्रस्थ शकुन्तला की अंगुलियाँ रक्तकुवल के पत्र जैसी होने से, आकर्षित हुआ एक भ्रमर नज़दीक में स्थित सरोवर से चला आता है और शकुन्तला के चित्र पर[19] मंडराने लगता है! (काश्मीरी पाठ के अनुसार, जिसमें शकुन्तला का चित्र आलिखित है उस चित्रफलक को मेधाविनी नामक दासी ने विदूषक के हाथ में सोंप रखा है और राजा को जब विदूषक के द्वारा सावधान किया जाता है कि चित्रस्थ शकुन्तला को यह भ्रमर परेशान करता है, तब अविनीतों का अनुशास्ता राजा उसका वारण करने की चेष्टा शुरू करते हैं।- यह दृश्य

---

[19] विदूषकः – किं नु अत्रभवती रक्तकुवलयशोभिनाग्रहस्तेन मुखमपवार्य चकितचकितेव स्थिता। (दृष्ट्वा) हे हे भो, एष दास्याः पुत्रः कुसुमपाटच्चरो मधुकरोऽत्रभवत्या वदनकमलम् अभिलषति।- *अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्*, (काश्मीर-पाठानुसारी), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2018, पृ. 536

केवल काश्मीरी वाचना के पाठ में ही उपलब्ध है ।) यहाँ राजा भ्रमर का प्रतिस्पर्धी नहीं बनते हैं, बल्कि वे तो भ्रमर का उपदेष्टा बन कर प्रस्तुत होते हैं, जिसमें वे भ्रमर को अपनी तृषिता मधुकरी, जो भ्रमर की प्रतीक्षा कर रही है, उसके पास जाने को समझाते हैं । (*प्रतिपालयति मधुकरी न खलु मधु त्वया विना पिबति ।।6-18*) तो इस तरह से, यहाँ पर भी प्रथमांक के भ्रमरबाधा प्रसंग के सामने, षष्ठांक में रखे प्रतिरूप में भ्रमरोपदेश का प्रसंग आता है । (5) द्वितीयांक के आरम्भ में परिश्रान्त, क्षुधाग्रस्त एवं राजा की मृगया से संत्रस्त हुआ विदूषक रोता-धोता प्रवेश करता है । किन्तु अंक के अन्त में, *इदानीं युवराजोऽस्मि* । बोलता हुआ विदूषक प्रसन्नचित्त हो कर रंगमंच से निष्क्रमण करता है । इस एक रूप के सामने दूसरा प्रतिरूप कालिदास ने षष्ठांक के आरम्भिक प्रवेशक में रखा है । वहाँ पर नगररक्षकों के द्वारा एक धीवर को मारा-पिटा जा रहा है, वह भी अपने प्राण खतरें में पडे महेसूस कर रहा है, वह रोता है, चिल्लाता है । किन्तु वही धीवर अन्त में, राजा की ओर से पारितोषिक प्राप्त करता है और प्रसन्नचित्त होते हुए बोलता है कि- *शूलादवतार्य हस्तिस्कन्धे समारोपितः* । (शूली से उतार कर, मुझे हस्ती पर बिठाया गया है- ऐसा अनुभव कर रहा हूँ ।) और वह रंगमंच से निष्क्रान्त होता है । (6) काश्मीरी, बंगाली, मैथिली (एवं अप्रकाशित बृहत्पाठवाली देवनागरी) के पाठों के अनुसार, तीसरे अंक में पुष्प की परागरज से कलुषित हुए शकुन्तला के नेत्र को दुष्यन्त अपने वदनमारुत से प्रमार्जित कर देता है । इस रूप के सामने जो दूसरा प्रतिरूप कवि ने खडा किया है वह षष्ठांक में मिलता है । जैसे कि, जिस चित्रफलक में शकुन्तला को चित्रित की गई है, उसी चित्र फलक में, दुष्यन्त ऐसा भी आलिखित करना चाहता है कि कृष्णमृग के शींग पर, पास में खडी मृगी अपना वामनेत्र खुजला रही हो ! (*शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्* ।। 6-17) (7) तीसरे अंक के अन्त में, सायंकाल होते ही भयप्रद राक्षसों की छायाएं यज्ञशाला पर विजृम्भित होने लगती हैं और दुष्यन्त को बुलावा आते ही, वह धनुष्य उठा कर रंगमंच से निष्क्रमण करता है । इस शृंगार-रसाप्लावित अंक का अन्त वीर रस के साथ किया जाता है । इसी रूप के सामने, खडे किये गये षष्ठांक में उसका प्रतिरूप देखने को मिलता है । वहाँ पर, राजा को धीवर से राजमुद्रा की पुनःप्राप्ति हो जाने से विरही दुष्यन्त शकुन्तला के चित्रफलक के सहारे अपने मन को बहलाने लगता है । अनपत्य मर गये धनमित्र के प्रसंग से दुष्यन्त को अपनी अनपत्यता का स्मरण होता है । किन्तु, अंक के अन्त में मातलि-प्रसंग आता है । मातलि ने अज्ञात रूप में रह कर, विदूषक को दबोचा है, वह त्राणार्थक चिल्लाता है । इसको सुन कर, विदूषक को बचाने के लिए दुष्यन्त धनुष्य-बाण उठाता है । तत्पश्चात् मातलि के कहने पर, दुष्यन्त दुर्जय दानवगण से संत्रस्त इन्द्र को भयमुक्त करने के लिए धनुष्य लेकर, अन्तरिक्ष लोक की ओर प्रस्थान करता है । इस तरह से, षष्ठांक के करुण-विप्रलम्भ रस का भी वीर रस के साथ समापन किया जाता है । (8) पहले, तीसरे और चौथे अंक में दो आश्रम-कन्याएं, प्रियंवदा एवं अनसूया की जोडी रखी है । उसके सामने, प्रतिरूप में, मारीचाश्रम में भी संयता एवं सुव्रता नाम की दो ऋषिकन्याएं रहती हैं । (9) षष्ठांक के आरम्भ में, परभृतिका एवं मधुकरिका नामक दो उद्यानपालिकाएं आती हैं, जो कामदेवार्चन करती हैं । तो उसके सामने, (काश्मीरी पाठ के) सप्तांक के प्रवेशक में, दो नाकलासिकाओं - पारिजातमञ्जरी एवं चूतमञ्जरी - का नृत्य आता है । (10) नाटक के शुरू के तीन अंकों में “कण्वदुहिता शकुन्तला” प्रस्तुत की गई है । उसके प्रतिरूप के रूप में, अन्तिम तीन अंकों में “दुष्यन्तपरिणीता शकुन्तला” आती है ।। निष्कर्षतः कहे तो, कालिदास की सर्जकप्रतिभा ने नाटक के पूर्वार्ध को ही उत्तरार्ध में, दूसरे स्वरूप में, नये अभिज्ञान के साथ पुनरावर्तित किया है ! शकुन्तला के अभिज्ञान की समस्या को लेकर प्रवर्तित किये गये नाटक के उत्तरार्ध में, शकुन्तला का अनागस हरिणी के रूप में अभिज्ञान प्राप्त करने का साथ साथ, दुष्यन्त को भी अपना सगन्ध मृग के रूप में नया अभिज्ञान प्राप्त होता है । दुष्यन्त को अपना, पत्नी शकुन्तला का एवं दौष्यन्ति-शाकुन्तलेय पुत्र भरत का अभिज्ञान मिलते ही समग्र नाटक एक सुसंवाद में परिणत होता है । जिसको क्रमशः हम “इति सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्” कहेंगे ।।

-----000----

सन्दर्भ-ग्रन्थसूचि

1. *अभिज्ञानशाकुन्तलम्* । (राघवभट्टस्य टीकया सहितम्), प्रका. राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2006, (देवनागरी पाठस्य संक्षिप्ततरं स्वरूपम् ।
2. *अभिज्ञानशाकुन्तलम्* । (घनश्यामकृत-सञ्जीवन-टिप्पणसमेतम्), सं. पूनम संकज रावळ, सरस्वती पुस्तक भण्डार, अमदावाद, 1997
3. *अभिज्ञानशाकुन्तलम्* । (काटयवेमकृतया व्याख्यया सहितम्), दाक्षिणात्य वाचना का पाठ, सं. चेलमचेर्ल, आन्ध्रप्रदेश संस्कृत अकादेमी, हैदराबाद, 1984
4. *अभिज्ञानशकुन्तला नाटकम्*, (काश्मीरी वाचना का समीक्षित पाठसम्पादन), सं. वसन्तकुमार म. भट्ट, राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, दिल्ली, 2018
5. *अभिज्ञानशकुन्तलम्* । (बंगाली वाचना का समीक्षित पाठसम्पादन), सं. रिचार्ड पिशेल, हार्वर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1922, (द्वितीयावृत्ति)
6. *अभिज्ञानशकुन्तलम्* । (मैथिल पाठानुगम्), शंकर-नरहरिकृताभ्याम् टीकाभ्यां संवलितम् । , सं. रमानाथ झा, मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, 1957
7. *अभिज्ञानशाकुन्तल का पाठपरामर्श* ।, वसन्तकुमार म. भट्ट, प्रकाशक- आर्य गुरुकुल, माउन्ट आबु, 2015.